Online at: https://researchtrendsjournal.com
Indexed Journal

ISSN No: 2584-282X
Peer Reviewed Journal

INTERNATIONAL JOURNAL OF TRENDS IN EMERGING RESEARCH AND DEVELOPMENT

Volume 3; Issue 4; 2025; Page No. 308-312

Received: 04-05-2025
Accepted: 12-06-2025
Published: 15-07-2025

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में प्रेस और मीडिया का योगदान: 1900 से 1947 तक का विश्लेषण

[1]Kunwer Vikram Singh and [2]Dr. Babu Ram Maurya

[1]Research Scholar, Mahakaushal University, Jabalpur, Madhya Pradesh, India
[2]Professor, Mahakaushal University, Jabalpur, Madhya Pradesh, India

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.20105081

Corresponding Author: Kunwer Vikram Singh

सारांश

1900 से 1947 तक का समय भारतीय पत्रकारिता के विकास का तीसरा चरण है। इसी चरण में 1905 में लॉर्ड कर्जन द्वारा बंगाल का विभाजन, स्वदेशी आंदोलन, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का सूरत अधिवेशन हुआ जिसने भारत के लिए पूर्ण स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त किया।चांदनी एट अल (2019)भारत के स्वतंत्रता संग्राम में प्रिंट मीडिया ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई। स्वतंत्रता के विचार को बढ़ावा देने में प्रिंट मीडिया बहुत उपयोगी रहा। प्रिंट मीडिया के बिना, देश के कई हिस्से अलग-थलग रह जाते और शायद स्वतंत्र राष्ट्र का विचार उभर ही नहीं पाता। स्वदेशी आंदोलन की शुरुआत 1905 में अंग्रेजों द्वारा बंगाल के विभाजन की प्रतिक्रिया के रूप में हुई थी। बंगाल को विभाजित करने के निर्णय को अंग्रेजों द्वारा भारतीय लोगों के बीच एकता को कमजोर करने और उन्हें धार्मिक आधार पर विभाजित करने के प्रयास के रूप में देखा गया था।

मूलशब्द: भारत, स्वतंत्रता, प्रेस, मीडिया, पत्रकारिता

प्रस्तावना

1900 से 1947 तक का समय भारतीय पत्रकारिता के विकास का तीसरा चरण है। इसी चरण में 1905 में लॉर्ड कर्जन द्वारा बंगाल का विभाजन, स्वदेशी आंदोलन, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का सूरत अधिवेशन हुआ जिसने भारत के लिए पूर्ण स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त किया। इस चरण में भारतीय प्रेस की भूमिका में भी भिन्नता देखी गई जिसने उदारवादी और कट्टरपंथी प्रवृत्तियों को जन्म दिया और स्वतंत्रता आंदोलन की राजनीतिक रणनीति और सटीक रणनीति बनाई। इस चरण में राष्ट्रवादी और ब्रिटिश समर्थक प्रेस के बीच संघर्ष भी देखा गया। महात्मा गांधी भी प्रेस की ताकत को समझते थे और उन्होंने प्रेस को ब्रिटिश शासन के खिलाफ एक शक्तिशाली हथियार के रूप में इस्तेमाल किया। अपने लेखन के माध्यम से उन्होंने लोगों को ब्रिटिश सरकार के खिलाफ विभिन्न आंदोलनों में भाग लेने के लिए दृढ़ता से प्रेरित किया।

1922 में जब गांधी जी पर राजद्रोह के आरोप में मुकदमा चलाया गया, तो पूरे भारतीय राष्ट्र ने वीरतापूर्ण प्रतिक्रिया देखी थी। "द इंडियन एक्सप्रेस" और "द हिंदुस्तान टाइम्स" जैसे समाचार पत्रों को राष्ट्रवादी समाचार पत्रों के रूप में मान्यता दी गई थी, जो भारत के लोगों के बीच अपनी पहुंच और प्रभाव के मामले में लगातार आगे बढ़ रहे थे। इस चरण में समाचार एजेंसियों, समाचार सेवाओं और भारत में विदेशी समाचारों के कवरेज के विस्तार के साथ प्रेस का महत्वपूर्ण विकास भी हुआ।

शुरू से ही जनसंचार माध्यम और राष्ट्रवाद एक दूसरे से जुड़े रहे हैं। मीडिया ने दुनिया भर में राष्ट्रवाद की अवधारणा को बढ़ावा देने और प्रचारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारत के लिए राष्ट्रवाद कोई नई अवधारणा नहीं है। ऋग्वेद में राष्ट्र के प्रति निष्ठा के प्रचार और विस्तार का वर्णन किया गया है। भारत की भौगोलिक इकाई और आध्यात्मिक एकता को वैदिक ऋचाओं में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है और देश की पवित्र नदियों की प्रशंसा की गई है।

महाभारत में भी भारत के एक राष्ट्र के रूप का उल्लेख मिलता है। इसके अलावा, धार्मिक ग्रंथ और ऐतिहासिक साक्ष्य जोर-शोर से बताते हैं कि प्राचीन काल में कई सम्राटों और सरकारों के अधीन भारत एकीकृत रहा है। प्राचीन ग्रंथों में राजा भरत के अधीन भारत का उल्लेख है और इन ग्रंथों में अखंड भारत शब्द का भी इस्तेमाल किया गया है। मौर्य साम्राज्य पूरे भारत और अफ़गानिस्तान के

कुछ हिस्सों सहित दक्षिण एशिया को एकजुट करने वाला पहला साम्राज्य था। इसके अलावा, भारत के अधिकांश हिस्से को गुप्त साम्राज्य, राष्ट्रकूट साम्राज्य, पाल साम्राज्य, मुगल साम्राज्य, विजयनगर साम्राज्य और मराठा साम्राज्य जैसे साम्राज्यों द्वारा एक केंद्रीय सरकार के तहत एकीकृत किया गया है। हालाँकि, यह ध्यान देने योग्य है कि भारतीय राष्ट्रवाद की जड़ें भले ही औपनिवेशिक काल से पहले की हों, लेकिन यह भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान पूरी तरह विकसित हुआ था।

इन एकजुट उपनिवेश-विरोधी गठबंधनों और आंदोलनों के माध्यम से भारत में भारतीय राष्ट्रवाद तेज़ी से लोकप्रिय हुआ। मदन मोहन मालवीय, बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी, गणेश शंकर विद्यार्थी, सरदार बल्लभ भाई पटेल, सुभाष चंद्र बोस और जवाहरलाल नेहरू जैसे स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं ने भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन का नेतृत्व किया और मीडिया ने औपनिवेशिक शासन के खिलाफ़ जनमत जुटाने में अहम भूमिका निभाई। स्वतंत्रता के बाद, भारतीय संविधान, संसद और सर्वोच्च न्यायालय, भारतीय चुनाव आयोग, राष्ट्रीय मीडिया और साथ ही गणतंत्र दिवस और स्वतंत्रता दिवस के समारोहों सहित कई संस्थानों ने राष्ट्रीय भावनाओं को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू और उनके उत्तराधिकारियों ने चीन और पाकिस्तान दोनों के साथ सीमा युद्धों के बावजूद भारतीय राष्ट्रवाद पर अभियान जारी रखा। 1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध और बांग्लादेश मुक्ति युद्ध के बाद, भारतीय राष्ट्रवाद स्वतंत्रता के बाद अपने चरम पर पहुंच गया।

भारत का स्वतंत्रता संघर्ष

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन निस्संदेह आधुनिक समाज द्वारा देखे गए सबसे बड़े जन आंदोलनों में से एक था। यह एक ऐसा आंदोलन था जिसने सभी वर्गों और विचारधाराओं के लाखों लोगों को राजनीतिक कार्रवाई में शामिल किया और एक शक्तिशाली औपनिवेशिक साम्राज्य को अपने घुटनों पर ला दिया। नतीजतन, ब्रिटिश, फ्रांसीसी, रूसी, चीनी, क्यूबा और वियतनाम क्रांतियों के साथ, यह उन लोगों के लिए बहुत प्रासंगिक है जो मौजूदा राजनीतिक और सामाजिक संरचना को बदलना चाहते हैं।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के विभिन्न पहलू, विशेष रूप से गांधीवादी राजनीतिक रणनीति, उन समाजों में इन आंदोलनों के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक हैं जो मोटे तौर पर कानून के शासन के दायरे में काम करते हैं, और एक लोकतांत्रिक और मूल रूप से नागरिक स्वतंत्रतावादी राजनीति की विशेषता रखते हैं। लेकिन यह अन्य समाजों के लिए भी प्रासंगिक है। हम इस तथ्य से परिचित हैं कि लेक वाल्सा ने भी पोलैंड में सॉलिडैरिटी मूवमेंट में गांधीवादी रणनीति के तत्वों को शामिल करने की सचेत कोशिश की थी।

वास्तव में, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन, अर्ध-लोकतांत्रिक या लोकतांत्रिक प्रकार की राजनीतिक संरचना को सफलतापूर्वक प्रतिस्थापित या रूपांतरित करने का एकमात्र वास्तविक ऐतिहासिक उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह एकमात्र ऐसा आंदोलन है जहाँ स्थिति के व्यापक रूप से ग्राम्शियन सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य को क्रांति के एक ही ऐतिहासिक क्षण में युद्ध में सफलतापूर्वक लागू किया गया था, लेकिन नैतिक, राजनीतिक और वैचारिक स्तर पर लंबे समय तक लोकप्रिय संघर्ष के माध्यम से; जहाँ प्रगतिशील चरणों के माध्यम से वर्षों में प्रति-आधिपत्य के भंडार बनाए गए थे; जहाँ संघर्ष के चरण 'निष्क्रिय' चरणों के साथ बारी-बारी से आते थे।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन भी इस बात का उदाहरण है कि मौजूदा ढांचे द्वारा प्रदान की गई संवैधानिक जगह का इस्तेमाल कैसे किया जा सकता है, बिना इसके सह-चुने जाने के। इसने इस जगह को पूरी तरह से खारिज नहीं किया; क्योंकि लोकतांत्रिक समाजों में इस तरह की अस्वीकृति से आधिपत्य प्रभाव के मामले में भारी कीमत चुकानी पड़ती है और अक्सर अलगाव की ओर ले जाती है, लेकिन इसमें प्रवेश किया और मौजूदा ढांचे को उखाड़ फेंकने के लिए गैर-संवैधानिक संघर्ष के साथ संयोजन में इसका प्रभावी ढंग से उपयोग किया।

साहित्य की समीक्षा

चांदनी एट अल (2019) [1] भारत के स्वतंत्रता संग्राम में प्रिंट मीडिया ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई। स्वतंत्रता के विचार को बढ़ावा देने में प्रिंट मीडिया बहुत उपयोगी रहा। प्रिंट मीडिया के बिना, देश के कई हिस्से अलग-थलग रह जाते और शायद स्वतंत्र राष्ट्र का विचार उभर ही नहीं पाता। इस शोधपत्र का उद्देश्य राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान प्रिंट मीडिया की भूमिका का विश्लेषण करना और इसकी उपस्थिति को ऐतिहासिक बनाना है। इसका उद्देश्य उन संपादकों की भूमिका पर भी नज़र डालना है जिन्होंने स्वतंत्रता की विचारधारा को फैलाने के लिए कड़ी मेहनत की।

श्री एट अल (2025) [2] किसी भी राष्ट्र के स्वतंत्रता संग्राम को कई ताकतों द्वारा आकार दिया जाता है, जिसमें राजनीतिक सक्रियता, जमीनी स्तर पर लामबंदी और संचार रणनीतियां शामिल हैं। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन से भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान सबसे प्रभावशाली उपकरणों में से एक प्रिंट मीडिया था। यह लेख समाचार पत्रों, पत्रिकाओं और पैम्फलेटों द्वारा जनमत को आकार देने, राष्ट्रीय चेतना को जगाने और भारतीयों के बीच सामूहिक पहचान को बढ़ावा देने में निभाई गई महत्वपूर्ण भूमिका का पता लगाता है। शुरुआती स्थानीय प्रेस से लेकर अंग्रेजी भाषा के समाचार पत्रों तक, प्रिंट मीडिया ने प्रतिरोध के मंच और शिक्षित करने, लामबंद करने और प्रेरित करने के साधन दोनों के रूप में काम किया।

हाशिम एट अल (2022) [3] समाचार पत्र महत्वपूर्ण मामलों पर लोगों का ध्यान आकर्षित करके किसी मुद्दे की सेवा और प्रतिबिंबित दोनों कर सकते हैं। यह अध्ययन जांच करता है कि 15 अगस्त 1947 को चयनित समाचार पत्रों-द टाइम्स ऑफ इंडिया, हिंदुस्तान टाइम्स, शिकागो डेली ट्रिब्यून और द आयरिश टाइम्स के पहले पन्ने पर भारत की स्वतंत्रता से संबंधित समाचारों को कैसे कवर किया गया था। सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों की कवरेज, शब्दों का चयन और समाचारों के पाठ में इस्तेमाल बयानबाजी, सुर्खियों का प्रतिनिधित्व और पहले पन्ने पर समाचार के लिए समर्पित स्थान की मात्रा की जांच की गई है। उद्देश्यों को पूरा करने के लिए पाठ विश्लेषण, आलोचनात्मक प्रवचन विश्लेषण और मात्रात्मक विश्लेषण जैसे विश्लेषणात्मक तरीकों को अपनाया गया था। अध्ययन ने विभिन्न फ्रेमों का भी विश्लेषण किया जिसमें स्वतंत्रता से संबंधित प्रत्येक समाचार को कवर किया गया है। परिणाम दिखाते हैं कि चार चयनित भारतीय और विदेशी समाचार पत्रों ने 15 अगस्त, 1947 को भारत की स्वतंत्रता पर समाचार चित्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

प्रियम एट अल (2022) [4] लोकतंत्र मानव सभ्यता की सबसे अच्छी उपज है और भारत सहित पूरी दुनिया में लोकतंत्र का दायरा सिकुड़ता जा रहा है। विभिन्न स्वतंत्र राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय निकायों के अवलोकन के अनुसार प्रेस की स्वतंत्रता में कटौती इस परिवेश

में प्रमुख परिणामों में से एक है। निष्पक्षता के उच्च नैतिक मानकों के लिए प्रेस को सार्वभौमिक रूप से सत्य के अवतार के रूप में मान्यता दी गई है। यह देश में बहुलवाद को बढ़ावा देने की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण अभिनेता है। 1947 में राजनीतिक मुक्ति को अपनाने के बाद से भारत एक लोकतंत्र के रूप में निरंतर परिवर्तन से गुजर रहा है। विरोधाभासी रूप से दो मजबूत धारणाएँ समकालीन सतह पर आईं, जहाँ प्रेस की स्वतंत्रता को सत्ता प्रतिष्ठान की एजेंसियों द्वारा दबाया जा रहा है और दूसरी ओर, प्रेस भी एक भयंकर प्रतिस्पर्धी खुले बाजार प्रणाली में अपनी अखंडता खो रहा है। इस संदर्भ में, लेख समकालीन भारत में प्रेस की भेद्यता और पुण्य भूमिका की जांच करेगा, इसके सामाजिक उत्तरदायित्व, पारदर्शिता और राज्य और गैर-राज्य अभिनेताओं की ओर से इसकी स्वतंत्रता पर हस्तक्षेप के पहलुओं के भीतर।

रोहताश एट अल (2021) [5] किसी भी देश की स्वतंत्रता की प्राप्ति काफी हद तक विभिन्न कारकों जैसे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रकृति के साथ-साथ सोचने के विभिन्न तरीकों के कारण होती है। 200 वर्षों की अवधि के दौरान, मीडिया और पत्रकारिता दोनों ने भारतीय स्वायत्तता की प्राप्ति में योगदान दिया है। ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीयों के बीच संचार की कमी एक गंभीर चिंता का विषय थी। संचार की छत्रछाया में, पत्रकारों ने भारतीयों को स्वतंत्रता के लिए उनके संघर्ष में मदद करने में तेजी से महत्वपूर्ण भूमिका निभानी शुरू कर दी। अज्ञानता के अलावा, भारतीयों को लगा कि वे अग्रदूतों के लेखन को पढ़ने और रिकॉर्ड करने में असमर्थ हैं, जिसमें ऐसी जानकारी का खजाना था जो उनके विकास के लिए महत्वपूर्ण था। प्रेस और मीडिया में समाचार कवरेज ने भारतीयों के बीच राष्ट्रवाद और राष्ट्रवाद की भावनाओं और अनूठी संवेदनाओं को प्रभावी ढंग से भड़काया है, जिससे पूरे अवसर की लड़ाई में स्वतंत्रता के उद्देश्य की मदद मिली। समाचार पत्रों और पत्रिकाओं का उपयोग अग्रदूतों द्वारा अपने विचारों को फैलाने और दूसरों को भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए किया गया था। स्वतंत्रता के संघर्ष के दौरान, अग्रदूतों को एक और चुनौती का सामना करना पड़ा: अधिकार स्थापित करना और कई प्रतिबंध। ब्रिटिश सरकार ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को रोकने के लिए वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट जैसे दंडात्मक कानून बनाए। राजनीतिक असंतुष्ट और पत्रकार इन रैलियों के खिलाफ संघर्ष में लगे हुए हैं। इस लेख के लेखक यह विश्लेषण करना चाहते हैं कि पत्रिकाओं ने भारतीय स्वायत्तता हासिल करने के लिए कैसे काम किया है, साथ ही उन्होंने अपने साथी भारतीयों को सिखाने में कैसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

उड़ीसा प्रेस ने असहयोग आंदोलन के स्वदेश आंदोलन और राष्ट्रीय मुख्यधारा के साथ संबंधों को 1900 से 1947 तक आकार दिया

अध्ययन की पृष्ठभूमि

स्वतंत्रता के पश्चात भारत में स्वतंत्रता संग्राम, जो औपनिवेशिक काल में शिक्षाविदों के लिए वर्जित विषय था, शोध और अध्ययन का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गया है। स्वतंत्रता संग्राम का अध्ययन तीन स्तरों पर किया गया है- राष्ट्र, प्रांत और स्थानीयता तथा उपनिवेशवाद विरोधी लामबंदी के इतिहास को मोटे तौर पर दो चरणों में विभाजित किया गया है- राष्ट्रवादी-पूर्व और राष्ट्रवादी; राष्ट्रवादी चरण जो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ शुरू हुआ, उसे गांधी-पूर्व और गांधीवादी चरणों में विभाजित किया गया है।

उड़ीसा को राष्ट्रीय मुख्यधारा और स्वदेशी आंदोलन से जोड़ने में प्रेस की भूमिका

स्वदेशी आंदोलन की शुरुआत 1905 में अंग्रेजों द्वारा बंगाल के विभाजन की प्रतिक्रिया के रूप में हुई थी। बंगाल को विभाजित करने के निर्णय को अंग्रेजों द्वारा भारतीय लोगों के बीच एकता को कमजोर करने और उन्हें धार्मिक आधार पर विभाजित करने के प्रयास के रूप में देखा गया था। इसके जवाब में, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, बिपिन चंद्र पाल और अन्य नेताओं ने ब्रिटिश सामानों के बहिष्कार और स्वदेशी उत्पादों को बढ़ावा देने का आह्वान किया। स्वदेशी आंदोलन के संदेश को फैलाने के लिए प्रेस एक प्रमुख मंच बन गया।

स्वतंत्रता-प्रेमी उड़िया लोग दक्षिण उड़ीसा पर ब्रिटिश विजय के समय से ही क्षेत्रीय राजनीति में बहुत सक्रिय थे। भारत के अन्य भागों के विपरीत, उड़ीसा पर ब्रिटिश कब्जे के तुरंत बाद लोगों में तीखी प्रतिक्रिया हुई, जिससे प्रतिरोध आंदोलन शुरू हो गए। इसकी शुरुआत ब्रिटिश सत्ता की अवज्ञा के रूप में हुई और प्रांत के विभिन्न भागों में लोकप्रिय विद्रोह हुए। 19वीं शताब्दी के पहले दशक में ही उड़िया लोगों ने प्राकृतिक उड़ीसा के एकीकरण के लिए उत्कल गौरव मधुसूदन दास के नेतृत्व में उत्कल संघ आंदोलन के रूप में जाना जाने वाला एक और आंदोलन शुरू किया। राष्ट्रीय स्तर पर भी उड़िया लोग पीछे नहीं रहे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के समय से ही वे राजनीति में बहुत सक्रिय थे। उड़ीसा में प्रेस ने उड़ीसा के लोगों में राष्ट्रवाद की भावना को प्रेरित करने और उसमें जान फूंकने में अग्रणी भूमिका निभाई। प्रेस के माध्यम से लेखन से प्रेरित उड़ीसा के प्रतिनिधि राष्ट्रीय कांग्रेस के विभिन्न सत्रों में भाग लेते थे और लोगों तक कांग्रेस का संदेश पहुँचाते थे।

भारत के अन्य भागों की तरह उड़ीसा में भी लोगों की राष्ट्रीय चेतना उन्नीसवीं सदी के अंतिम चौथाई तक पर्याप्त रूप से जागृत हो चुकी थी। ब्रिटिश शासन की बुराइयों के प्रति जागरूकता, सार्वजनिक संघों की स्थापना, शिक्षित मध्यम वर्ग का उदय और प्रेस का उदय, इन सभी ने उड़ीसा में एक नई जागृति में योगदान दिया।

इस प्रकार, निश्चित रूप से, उड़ीसा के अभिजात वर्ग राजनीतिक रूप से जागरूक थे और उन्होंने विभिन्न आंदोलनों का नेतृत्व करने और अपनी मांगों को पूरा करने के लिए कई संघों और संगठनों का गठन किया था। कटक में 'उत्कल सभा' नामक एक संघ का गठन किया गया था, जिसके पहले अध्यक्ष चौधरी काशीनाथ दास और उत्कल दीपिका के संपादक गौरीशंकर रे थे। उत्कल सभा ने विभिन्न मामलों पर चर्चा करने के लिए 16 अगस्त, 1882 को कटक प्रिंटिंग कंपनी के परिसर में अपनी पहली बैठक आयोजित की। अध्यक्ष और सचिव के अलावा दो उपाध्यक्ष और कार्यकारी समिति के कुछ सदस्य थे। सबसे सक्रिय सदस्य मधुसूदन दास शुरू से ही उत्कल सभा से जुड़े थे। उड़ीसा की प्रमुख पत्रिका के संपादक गौरीशंकर राय बहुत लंबे समय तक संगठन के सचिव रहे। वस्तुतः उत्कल सभा की अधिकांश बैठकें उत्कल दीपिका के परिसर में ही होती थीं और अपनी पत्रिकाओं के माध्यम से गौरीशंकर ने संगठन की गतिविधियों को समुचित प्रचार-प्रसार दिया। उत्कल सभा ने 21 मई 1883 को इल्बकर्ट विधेयक पर चर्चा के लिए एक विशेष बैठक आयोजित की।

भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष अखिल भारतीय स्तर पर संगठित तरीके से 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ शुरू हुआ। कांग्रेस आंदोलन का इतिहास इस तथ्य का

प्रमाण है कि स्वतंत्रता संग्राम के सभी चरणों और पहलुओं में उड़ीसा ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इस प्रकार 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी। एलन ऑक्टेवियन ह्यूम के परिपत्र ने उड़िया अभिजात वर्ग के मन में काफी उत्साह जगाया था। प्रेसीडेंसी एसोसिएशन के माध्यम से उन्होंने उड़ीसा के सभी स्थानीय संघों को अपने प्रतिनिधियों को बंबई भेजने के लिए आमंत्रित किया। राष्ट्रीय कांग्रेस के पहले सत्र की शुरुआत से पहले उड़ीसा के प्रमुख साप्ताहिक, उत्कल दीपिका ने लिखा, "कांग्रेस प्रशासनिक सुधारों के सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न पर चर्चा करेगी। यह वांछनीय है कि उड़ीसा के प्रतिनिधि इसमें भाग लें"। एम. विश्वनाथ अय्यर, जिला न्यायालय, गंजम के वकील, जो बरहामपुर के नगर आयुक्त भी थे, 72 आमंत्रितों के साथ बंबई में आयोजित पहले भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस सत्र में शामिल हुए। मधुसूदन दास और गौरीशंकर राय ने 25 दिसंबर 1885 को कलकत्ता में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के भारतीय संघ के दूसरे सम्मेलन में भाग लेने का फैसला किया था। हालाँकि, उड़ीसा के अभिजात वर्ग को कांग्रेस की गतिविधियों पर लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए बॉम्बे से ताज़ा समाचारों का बेसब्री से इंतज़ार था, राष्ट्रीय कांग्रेस के पहले सत्र में पारित सभी प्रस्तावों को सभी उड़िया साप्ताहिकों में प्रकाशित किया गया और पूरे उड़ीसा में प्रसारित किया गया। राष्ट्रीय कांग्रेस की गतिविधियों पर लोगों का तुरंत ध्यान आकर्षित करने का एक और प्रयास भी किया गया।

उत्कल सभा के तत्वावधान में 3 मार्च 1886 को कटक प्रिंटिंग कंपनी भवन में एक सार्वजनिक बैठक बुलाई गई, जिसमें कांग्रेस द्वारा अपने पहले सत्र में अपनाए गए प्रस्तावों पर चर्चा की गई। शहर के सभी प्रमुख लोगों ने इस बैठक में भाग लिया और विचार-विमर्श में हिस्सा लिया। एक प्रस्ताव के आंशिक संशोधन को छोड़कर अन्य सभी प्रस्तावों को सर्वसम्मति से अपनाया गया और उत्कल दीपिका में प्रकाशित किया गया। इस प्रकार यह उड़ीसा में कांग्रेस की पहली बैठक थी। बंबई में राष्ट्रीय कांग्रेस के पहले सत्र को एक तरह के "मध्यम वर्ग के दरबार" के रूप में वर्णित किया गया है। उड़ीसा में भी प्रबुद्ध मध्यम वर्ग के लोग शुरू में सार्वजनिक बैठकों में रुचि रखते थे। इस प्रकार, राष्ट्रीय कांग्रेस की गतिविधियों की शुरुआत मध्यम वर्ग के बुद्धिजीवियों के एक वर्ग द्वारा की गई, जो न केवल सामाजिक सुधारों और शैक्षिक कार्यों में रुचि रखते थे, बल्कि "बैठकों, चर्चाओं, पुस्तिकाओं, समाचार पत्रों (प्रेस) आदि के माध्यम से राजनीतिक चेतना को बढ़ावा देने का प्रयास करते थे"।

अपनी स्थापना के एक वर्ष के भीतर ही राष्ट्रीय कांग्रेस उड़ीसा और भारत के अन्य भागों में अभिजात वर्ग के बीच अच्छी तरह से जानी जाने लगी। दिसंबर 1886 में कलकत्ता में दूसरे अधिवेशन के आयोजन से बहुत पहले, कटक से प्रकाशित उत्कल दीपिका और बालासोर से प्रकाशित संवाद बहिका ने उड़िया लोगों की समस्याओं पर अपने विचार रखे। साप्ताहिक पत्रिकाओं ने नेताओं से राष्ट्रीय कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन में भाग लेने का आग्रह किया।16 उत्कल दीपिका ने लिखा कि - "इस वर्ष कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन 28 दिसंबर को कलकत्ता में आयोजित किया जाएगा, जैसा कि राष्ट्रीय कांग्रेस का पिछला वार्षिक अधिवेशन बंबई में आयोजित किया गया था।

- विधान सभाओं का पुनर्गठन
- रानी का भव्य समारोह
- ब्रिटिश संसद द्वारा भारतीय प्रशासन पर अवलोकन
- सिविल सेवा
- संसद में भारतीय प्रतिनिधित्व
- सैन्य व्यय
- शस्त्र विनियमन
- आयकर आदि।

ओरिज़ाबा प्रांत की स्थापना और सविनय अवज्ञा आंदोलन के लिए प्रेस

पृथक उड़ीसा प्रांत के गठन में प्रेस की भूमिका

उड़ीसा के हिंदू राज्य ने अंतिम राजा मुकुंद देव के निधन के बाद अपनी पूरी राजनीतिक पहचान खो दी। अफगानों, मुगलों, नायब-नाजिमों, मराठों के शासन ने और अधिक अस्थिरता और क्षेत्रीय विभाजन लाया। ब्रिटिश शासन के तहत आगे तीन प्रमुख राजनीतिक विभाजन हुए। यानी चिल्का झील के उत्तर में क्षेत्र, चिल्का झील के दक्षिण में क्षेत्र और पश्चिमी पहाड़ी क्षेत्र। धीरे-धीरे ये विभाजन अलग-अलग परिस्थितियों में बदल गए। अंत में, इसने प्रशासन के तहत आकार लिया, यानी बंगाल प्रेसीडेंसी, मद्रास प्रेसीडेंसी और मध्य प्रांत, समय की आवश्यकताओं के अनुसार बिना किसी जाति, भाषा और संस्कृति पर विचार किए। नतीजतन, इस प्रशासन में उड़िया लोग नगण्य अल्पसंख्यक बन गए।

पहचान के संकट ने हमेशा लोगों को धर्म, भाषा, क्षेत्र, संस्कृति, परंपराओं और इसी तरह की अन्य चीजों के रूप में एक दूसरे से जुड़ने के लिए एक दूसरे से जुड़ने के लिए प्रेरित किया है। एकता के सभी धागों में भाषा सबसे महत्वपूर्ण और प्रभावी है जो अन्य सभी धागों को जन्म देती है। ब्रिटिश भारत में उड़िया भाषी वर्गों को बेतरतीब ढंग से विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों में शामिल किया गया था, जहाँ वे एक महत्वहीन अल्पसंख्यक थे। इस तरह, एक प्रांत में उनकी कोई बात नहीं सुनी जाती थी, जहाँ उनकी आवाज़ को एक प्रभावशाली वर्ग द्वारा दबा दिया जाता था। पहचान के संकट के कारण उन्हें उनके वैध अधिकारों से वंचित किया जा रहा था।

उन्नीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में, साहित्य, प्रेस, शिक्षा, राजनीतिक संगठनों के विकास और एक अभिजात वर्ग के उदय से अलग पहचान की चेतना के विकास के साथ, ब्रिटिश भारत की विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों में बिखरे हुए उड़िया लोगों के लिए एक अलग प्रांत के गठन के आंदोलन ने गति पकड़ी।

उड़ीसा पर ब्रिटिश विजय की उपलब्धि के तीन अलग-अलग चरण थे, जिसके कारण उसका राजनीतिक अलगाव हुआ। 1766 में मद्रास प्रेसीडेंसी का एक हिस्सा बनाया गया, जिसमें गंजम और उसके आस-पास के इलाके शामिल थे। 1803 से बंगाल सरकार ने बालासोर, कटक, पुरी के तटीय जिलों और आस-पास के गराज पर शासन किया। कुछ सामंती राज्यों सहित संबलपुर के पश्चिमी जिले मध्य प्रांत के मुख्य आयुक्त के प्रशासनिक नियंत्रण में आ गए। जबकि जिलों पर कंपनी के अधिनियमों द्वारा शासन किया जाता था। ब्रिटिश सरकार ने राजाओं को मध्यस्थ बनाकर, समझौतों और सनातन धर्म से बंधे रखते हुए अलग-अलग पैटर्न का पालन किया। इस प्रकार प्राचीन और शक्तिशाली राष्ट्र का राजनीतिक विघटन, जिसकी एक विशिष्ट भाषा और कला, वास्तुकला, संगीत और साहित्य के रूप में गौरवशाली सांस्कृतिक विरासत थी, इतिहास की एक दुर्घटना थी।2 उड़िया भाषी लोग अपने सर्वेक्षण में इसे राष्ट्रीय उड़ीसा कहते हैं

राजनीतिक विघटन के परिणामस्वरूप न केवल राष्ट्रीय एकता नष्ट हुई बल्कि उड़िया भाषी लोगों के लिए भी विनाशकारी परिणाम सामने आए। उड़िया को अल्पसंख्यक भाषा माना गया और उसे उदासीनता और उपेक्षा का सामना करना पड़ा। उड़िया को अपने

अस्तित्व के लिए बंगाली, तेलुगु और हिंदी जैसी अधिक शक्तिशाली भाषाओं से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ी। शक्तिशाली पड़ोसियों के अंधराष्ट्रवादी रवैये के कारण उड़िया भाषा को गंभीर नुकसान उठाना पड़ा। कनरीलाल भट्टाचार्य और राजेंद्रलाल मित्रा जैसी हस्तियों ने उड़िया को भाषा की विशिष्टता से वंचित कर दिया। बंगाली को स्कूलों में शिक्षा का माध्यम बनाया जाना था और यहां तक कि बंगाली को पाठ्य पुस्तकों की भाषा बनाया जाना था और सबसे दुखद बात यह थी कि उड़ीसा संभाग के स्कूलों में बंगाली शिक्षकों की भर्ती की जानी थी। उत्कल दीपिका ने देखा कि उड़िया लिपि को भी खतरा था।

मद्रास प्रेसीडेंसी और मध्य प्रांतों में रहने वाले उड़िया लोगों को भी ऐसी ही समस्याओं का सामना करना पड़ा, जहाँ स्कूलों में क्रमशः हिंदी और हिन्दी का बोलबाला था और उड़िया बच्चे वंचित थे। शिक्षा की कमी के कारण उड़िया बेरोजगार रह गए और उन्हें दूसरे दर्जे के नागरिक के रूप में माना गया। उन्हें अपनी मातृभाषा के अलावा अन्य भाषाएँ सीखने के लिए मजबूर किया गया।

उड़ीसा में 1866 के भीषण अकाल ने उड़ीसा की भूमि और लोगों पर गहरा घाव कर दिया था। प्रांतीय सरकार की घोर लापरवाही, सड़कों और परिवहन व्यवस्था के अभाव के कारण उड़ीसा के बहुत से लोग भुखमरी और महामारी से मर गए थे। परिणामस्वरूप, ब्रिटिश सरकार को इस अभूतपूर्व मानवीय त्रासदी का अहसास हुआ, जिसकी ओर से भारत के सचिव स्टैफ़ोर्ड नॉर्थकोट ने नियमित रूप से प्राकृतिक आपदाओं से घिरे देश की प्रशासनिक उपेक्षा के खतरे को कम करने के उपाय के रूप में उड़िया भाषी क्षेत्रों को फिर से संगठित करने का सुझाव दिया। 1894 में, उड़ीसा डिवीजन के आयुक्त एच.जी.कुक ने संबलपुर जिले और पटना, सोनपुर, रायराखोल, बामरा, कालाहांडी और पूरे गंजम जिले को किमचडी और ग्लुनसूर के साथ जोड़कर क्षेत्रीय समायोजन का सुझाव दिया।

निष्कर्ष

यह बात बिलकुल समझ में आती है कि राष्ट्रवाद के बीज पश्चिमी उपनिवेशवादियों के ज़रिए भारत में फैले। वे एक भाड़े के साम्राज्यवादी मिशन पर आए थे, लेकिन दूसरी तरफ़ उन्होंने लोकतंत्र और मानवीय मूल्यों के बीज बोए, बिना उनकी जानकारी के। भारत में उनका रहना भारतीयों के लिए अभिशाप और वरदान दोनों था। उदारवाद, राष्ट्रवाद और लोकतंत्र की अवधारणा को समय के साथ भारतीय धरती पर अंकुरित होने, खिलने और अडिग वृक्ष बनने के लिए एक नई ज़मीन मिली। इसने अज्ञानता और आलस्य को दूर किया, लंबे समय तक गुलामी और दासता से परिपक्व हुई दासता और मूर्खता की गांठों को काटा।

पश्चिम से ईसाई मिशनरी भारत को दासता और पीड़ा से बाहर निकालने के लिए एक ईश्वरीय आशीर्वाद के रूप में आए। हालाँकि उनका मिशन अपने झुंड में अधिक भेड़ें इकट्ठा करना था, लेकिन अंततः वे गरीबी और बीमारी, अज्ञानता और क्षयकारी रूढ़िवाद से त्रस्त लाखों लोगों के लिए उद्धारकर्ता के रूप में उभरे। इन मिशनरियों की मदद से पश्चिमी शिक्षा प्रदान करने और नए विचारों और मूल्यों को विकसित करने के लिए कई स्कूल और कॉलेज स्थापित किए गए। उन्होंने पश्चिम को जाति से परिचित कराया और इस प्रकार विश्लेषण, संश्लेषण, सद्भाव और स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त किया।

अंग्रेजों के आने से पहले उड़ीसा लंबे समय तक अफगान, मुगल और मराठा शासन के अधीन रहा, जब 1568 में अंतिम स्वतंत्र हिंदू राजा मुकुंद देव की मृत्यु हो गई। इन दुष्ट शासकों के हाथों लंबे समय तक दमन, अभाव को अंग्रेजों ने 1803 में उड़ीसा पर कब्ज़ा करने के बाद और भी बदतर बना दिया। दुर्भावनापूर्ण और भाड़े के ब्रिटिश शासन के तहत उड़ीसा को टुकड़ों में विभाजित किया गया था और उन्हें अलग-अलग प्रांतों के उपांग के रूप में टैग किया गया था। इस प्रकार उड़ीसा की सांस्कृतिक, भाषाई और जातीय पहचान खतरे में पड़ गई और दरिद्र हो गई।

संदर्भ

1. त्यागी, ममता और सेनगुप्ता, चांदनी। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में प्रिंट मीडिया की भूमिका का विश्लेषण: एक ऐतिहासिक कथा। 2019;09:487-492.
2. सिंह, डॉ. और आलम, डॉ. और कुमार, श्री. भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई में प्रिंट मीडिया की शक्तिशाली भूमिका: एक अध्ययन. इंटरनेशनल जर्नल फॉर रिसर्च पब्लिकेशन एंड सेमिनार. 2025;16:111-122. 10.36676/jrps.v16.i2.258.
3. गोस्वामी मानष, रमेश, अंजलि और पुथियाकाथ, हाशिम। 15 अगस्त, 1947 को चुनिंदा अंग्रेजी समाचार पत्रों में भारत की स्वतंत्रता के समाचार कवरेज का विश्लेषण। 2022, LVII।
4. संगीता डे, बसु ठाकुर प्रियम. भारत में प्रेस की स्वतंत्रता: सद्गुणी या कमज़ोर? 2022;2:25-38.
5. रोहताश, रोहताश. स्वतंत्रता संग्राम और पत्रकारिता के मूल्यों पर एक आलोचनात्मक अध्ययन रोहताश, 2021.
6. रॉय, देवव्रत. प्रेस और मीडिया की स्वतंत्रता और एक लोकतांत्रिक देश में इसकी भूमिका।, 2019.
7. तनेजा, विजयता. राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय प्रिंट मीडिया में भारतीय स्वतंत्रता पर परिप्रेक्ष्य का अध्ययन. 2024;LVIII:11-20.
8. यादव डॉ. भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में प्रिंट मीडिया की भूमिका. रिसर्च जर्नल ऑफ फिलॉसफी एंड सोशल साइंसेज. एल. 2024, 307-313. 10.31995/rjpsss.2024v50i02.37.
9. शेरगोजेरी, अर्शीद और शेरगुग्रे, लतीफ. भारतीय लोकतंत्र में मीडिया की भूमिका. 2016, 2454-9827. 10.5947/2454-9827.2022.00009.14.
10. सूद, नाज़ुक. भारत में लोकतंत्र को मजबूत करने में प्रेस की भूमिका भारत में प्रेस की स्वतंत्रता, 2022.
11. इज़राइल एम. संचार और शक्ति: भारतीय राष्ट्रवादी संघर्ष में प्रचार और प्रेस, 2015, 1920-1947.
12. नाहक दुर्योधन. भारत के संवैधानिक परिप्रेक्ष्य के माध्यम से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और मीडिया भाषण का विश्लेषण. शोधकोश: जर्नल ऑफ विजुअल एंड परफॉर्मिंग आर्ट्स. 2024;5:313-319. 10.29121/shodhkosh.v5.i7.2024.2616.
13. बेदी देविका, तोमर युकी आज़ाद. कलम के दर्द को समर्पित एक कविता: पनामा पेपर्स खुलासे के दौर में प्रेस की आज़ादी और खोजी पत्रकारिता की भूमिका का अध्ययन, 2016.

Creative Commons (CC) License
This article is an open access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.